'इसी रटन्त विद्या का नाम शिक्षा रख छोड़ा है' : प्रेमचंद

निशा नाग

1934 में प्रकाशित प्रेमचंद की कहानी 'बड़े भाई साहब' भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर तीखी साहित्यिक संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत करती है, जो आज 85 वर्ष बाद भी प्रासंगिक प्रतीत होती है। रटन्त प्रणाली, उबाऊ शिक्षा, पढ़ाई का बोझ, परीक्षा प्रणाली और प्रतियोगिता के इर्दगिर्द बुनी गई यह कहानी छोटे और बड़े भाई के पढ़ने-लिखने के तरीकों की जद्दोजहद के बीच शिक्षा के कई गहरे सवाल उठाती है, जिसमें पारम्परिक और नए विचारों की शिक्षा का द्वंद्व मुखरता से दिखाई देता है।

शिक्षा विमर्श में इस तरह के लेखों का टोटा है जो साहित्य की खिड़की से शिक्षा के अहाते में झाँकने की कोशिश करते हों। निशा नाग का यह लेख इस कमी को पूरा करने की पहल दिखाई देती है।

निशा नाग ने 'बड़े भाई साहब' के उद्धरणों की व्याख्या के माध्यम से आज के सन्दर्भ में शिक्षा के मायने, मकसद और ज़रूरत को देखने की कोशिश की है। सं.

इस लेख की शुरुआत एकदम अनौपचारिक ढंग से और घर परिवार से शुरू करूँ तो घर के 95 वर्षीय बुज़ुर्ग अकसर कहते हैं- 'ये जो एक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर होते हैं, ये केवल फ़ाइल के इंजीनियर होते हैं। सिर्फ़ फ़ाइलें चलाते हैं किसी भी योजना को अमली जामा तो कोई और ही पहनाता है। ये जो इलैक्ट्रॉनिक इंजीनियर होते हैं, ये आपके फ्रिज या टीवी को ठीक नहीं कर सकते। इसे ठीक करने वाला मैकेनिक, तकनीक में उच्च शिक्षित व्यक्ति नहीं होगा, वह वही होगा जो दसवीं या बारहवीं पास है और जिसने किसी मैकेनिक के साथ रहकर काम सीखा है।' उनकी इस बात की सच्चाई शिक्षा व्यवस्था की बुनियादी ख़ामी की ओर सोचने पर मज़बूर कर देती है। आज आम आदमी के मन में शिक्षा की आम अवधारणाओं में, चाहे वह शहरी समाज से हो या ग्रामीण, कमोबेश कोई अन्तर नहीं है। हाँ, यह फ़र्क़ पढ़े-लिखे या निर्धन मज़दूर वर्ग की सोच में हो सकता है। पहले छह या सात बरस से पहले बच्चे स्कूल न भेजे जाते थे, अब आँगनवाड़ियों ने इस चलन को बदला है, दूसरे अँग्रेज़ी शिक्षा के प्रति बढ़ते मोह ने गाँव के आसपास खुलने वाले तथाकथित कॉनवेण्ट में बच्चे को भरती कराने के लालच ने भी स्कूल भेजने की इस उम्र को घटाया है। कुल मिलाकर शहरों में अब तीन बरस तक और गाँवों में पाँच बरस की आयु तक शिशु को स्कूल भेज दिया जाता है। इसके बाद वह शिशु स्कूल में पढ़ते हुए ही किशोर और वयस्क होता है। शिक्षा के उद्देश्य और अवधारणा पर अकसर बहस की जाती रही है। शिक्षा के सन्दर्भ में एक साधारण और सर्वमान्य बात यह की जाती है कि शिक्षा व्यक्ति को सुसंस्कृत और सभ्य बनाने के साथ-साथ उसकी समझ और योग्यताओं का भी विकास करती है। शिक्षा द्वारा शिशु की क्षमताओं को विकसित किया जाता है तथा उसमें नई सक्षमता का निर्माण किया जाता है। शिक्षा के बारे में कुछ जाने-माने तथ्य यह हैं कि शिक्षा और शिक्षा का तरीक़ा किसी भी समाज का आईना होते हैं।

शिक्षा द्वारा विद्यार्थी को उसके परिवेश, समाज, राष्ट्र, विश्व, भौगोलिक, सामाजिक-आर्थिक जीवन आदि से सम्बन्धित कुछ तथ्य दिए जाते हैं, जिनके आधार पर व्यक्ति की समझ या अन्तर्दृष्टि विकसित होती है। व्यक्ति के भीतर किसी भी स्थिति से सम्बन्धित विविध तथ्यों को जान लेने के बाद उनके सन्दर्भ में उचित निर्णय ले पाने की क्षमता का विकास भी शिक्षा ही करती है। शिक्षा द्वारा समाज अपने नागरिकों में रहने-खाने, ओढ़ने-पहनने, बातचीत-व्यवहार करने से सम्बन्धित विभिन्न आदतों का विकास किया जाता है। जीवन व्यवहार से सम्बन्धित तमाम नैतिक अभिवृत्तियों और आदतों का विकास शिक्षा के द्वारा किया जाता है जिसमें स्वच्छता से लेकर समाज के अन्य लोगों के साथ किया जाने वाला व्यवहार आदि शामिल हैं। शिक्षा की एक अन्य ज़िम्मेदारी सामान्य नागरिक जीवन जीने हेतु कौशल प्रदान करना भी है, ताकि वह भावी जीवन में रोज़गार प्राप्त कर सके।

वर्तमान शिक्षा पद्धति के सन्दर्भ में यदि इतिहास में जाया जाए तो भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वाधीनता आन्दोलन के उभार के साथ ही 1920 में शिक्षा पर एक व्यापक बहस होते हुए भी देखते हैं। यह वह युग था जब अँग्रेज़ सरकार और उसकी नीतियों को शंका की नज़र से देखा जाने लगा था व उसके साथ ही शिक्षा व्यवस्था भी सवालों के घेरे में आ गई थी। 1937 में वर्धा में गाँधीजी ने बुनियादी तालीम की बात की, जिसमें मोटेतौर पर यह कहा गया था कि पाँचवी कक्षा तक छात्र सभी विषयों का सामान्य अध्ययन करे, उसके पश्चात उसकी अभिरुचि और क्षमता को देखते हुए विज्ञान, अर्थशास्त्र अथवा अन्य विषय छात्र को पढ़ने को दिया जाए। विद्यालय में साढ़े पाँच घण्टों की अवधि के दौरान लगभग तीन घण्टे कढ़ाई-बुनाई, कताई-रंगाई आदि किसी भी विषय का प्रशिक्षण दिया जाए, किन्तु आधुनिक शिक्षा व्यवस्था साक्षर बनाने पर अधिक बल देती है और शिक्षा पर कम।

शिक्षा पद्धति की इस ख़ामी को अँग्रेज़ी शासन काल से ही बड़ी शिद्दत से महसूस किया जाने लगा था, किन्तु अफ़सोस कि आज स्वतंत्र हुए भी 72 साल बीत गए पर कहीं कोई अन्तर नहीं आया है। स्थानीय भाषाओं के प्रति उदासीनता बढ़ी है और अँग्रेज़ी भाषा के प्रति मोह ने शिक्षा को दुकानदारी में बदल दिया है। इससे भी आगे शिक्षा छात्रों की रुचि को अवरुद्ध करती है, इसे सभी महसूस करते हैं। आज से 85 वर्ष पूर्व लिखी गई मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'बड़े भाई साहब' में विद्यार्थी की नज़र से जिस शिक्षा पद्धति की बात की गई है, वह आज भी मौजूद है। इस कहानी में लेखक एक नई तरह की दुनिया रचने को उत्सुक दिखाई देता है। जिस दशक में भारत– ख़ासकर उत्तर भारत– नए माहौल से गुज़र रहा था और उस माहौल में जीने का क्या अर्थ था, इससे सम्बन्धित प्रेमचंद की विशद दृष्टि इस कहानी में दिखाई देती है। अप्रैल 1930 के हंस में प्रेमचंद लिखते हैं।

> *'इस नई शिक्षा का आशय क्या है? आज्ञापालन हमारे जीवन का एक अंग है और हमेशा रहेगा। अगर हर एक आदमी अपने मन की करने लगे, तो समाज का शिराजा बिखर जाएगा। अवश्य हर एक घर में जीवन के इस मौलिक तथ्य की रक्षा होनी चाहिए। लेकिन इसके साथ ही माता-पिता की यह कोशिश होनी चाहिए कि उनके बालक उन्हें पत्थर की मूर्ति या पहेली न समझें। चतुर माता-पिता बालकों के प्रति अपने स्वभाव को जितना स्वाभाविक बना सकें उतना बनाना चाहिए। क्योंकि बालक के जीवन का उद्देश्य कार्यक्षेत्र में आना है केवल आज्ञा मानना नहीं है। वास्तव में जो बालक इस तरह की शिक्षा पाते हैं उनमें आत्मविश्वास का लोप हो जाता है। वे हमेशा किसी की आज्ञा का इन्तज़ार करते हैं। हम समझते हैं कि आज कोई भी बाप अपने बालक को ऐसी आदत डालने वाली शिक्षा न देगा।'*

प्रेमचंद का यह लेख इस शिक्षा व्यवस्था पर ऐसा व्याख्यान है जिसमें पूरा एक अरमान

दिखाई देता है।

प्रेमचंद की कहानी 'बड़े भाई साहब' शिक्षा व्यवस्था के सन्दर्भ में आज भी प्रासंगिक है। 1934 में प्रकाशित 'बड़े भाई साहब' कहानी केवल रचना नहीं, एक प्रतीक है। कहानी की शुरुआत इसी तथ्य से होती है कि–

'मेरे बड़े भाई साहब मुझसे पाँच साल बड़े थे लेकिन केवल तीन दरजे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था जब मैंने शुरू किया; लेकिन तालीम जैसे महत्त्व के मामले में वह जल्दबाज़ी से काम लेना पसन्द न करते थे।... मैं छोटा था वह बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल की, वह चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा जन्मसिद्ध अधिकार था। और मेरी शालीनता इसी में थी कि मैं उनके हुक्म को क़ानून समझूँ।'[1]

इस कहानी की शुरुआत ही भारतीय परिवार की उस व्यवस्था की ओर इशारा करती है जहाँ बड़ा भाई या बहन माता-पिता के बाद द्वितीय अभिभावक होता है। और उससे उसका बचपन छीनकर यह उम्मीद की जाती है कि वह प्रौढ़ की तरह व्यवहार करे। उससे तमाम तरह की नैतिकताओं और मर्यादाओं के पालन की उम्मीद रखी जाती है। भाषा अध्ययन की दृष्टि से भी यह पाया गया है कि घर के बड़े बच्चे की भाषा में गार्ज़ियन की भाषा के अनुकरण के तत्त्व अधिक मिलते हैं। यह कहानी भारतीय समाज में संयुक्त परिवार में बड़े बच्चे की स्थिति का संकेत मात्र ही नहीं है, किस परिस्थिति और मानसिक दबाव में घर का बड़ा बच्चा पढ़ रहा है कि उसके लिए पढ़ाई एक अतिरिक्त व्यायाम है या उसकी मज़बूरी है कि चाहे मन हो या न हो, वह किताब लेकर बैठा रहे। किताब के भीतर सर घुसाए रखने को अध्ययनशीलता का पर्याय माना गया है क्योंकि यह शिक्षा पद्धति प्रश्न उठाने को नहीं, आज्ञाकारिता को महत्त्व देती है। प्रेमचंद कहते हैं-

'बड़े भाई साहब स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते और शायद दिमाग़ को आराम देने के लिए कभी कॉपी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे।'[2]

प्रेमचंद की यह ख़ासियत है कि सूक्ष्म संकेतों में वह बहुत कुछ कह जाते हैं। किसी भी बच्चे की मन:स्थिति को यदि जानना हो तो उसकी रफ़ कॉपी के अन्तिम पेज पर देखा जाए, उन टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियों में उसका पूरा मनोविज्ञान बोलता है। हम सब भी अकसर किसी व्याख्यान में मन न लगने पर 'जोई सोई कछु गावै' के अन्दाज़ में कुछ आकृतियाँ बनाते हैं। बड़े भाई साहब का जी पढ़ने में हरगिज़ नहीं लगता, किन्तु पढ़ने का ड्रामा करना उनके लिए ज़रूरी है। जबकि छोटा भाई स्वीकार करता है कि

'मेरा जी पढ़ने में बिल्कुल न लगता था। एक घण्टा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौक़ा पाते ही होस्टल से निकल कर मैदान में आ जाता और कभी कंकरियाँ उछालता, कभी काग़ज़ की तितलियाँ उड़ाता और कहीं कोई साथी मिल गया तो फिर पूछना ही क्या?'3 और उधर कमरे में जाते ही भाई साहब का पहला सवाल यही होता– 'कहाँ थे'?

और इस प्रश्न के उत्तर में छोटा भाई अपराध बोध से ग्रस्त हो जाता। क्योंकि बड़े भाई साहब कमरे की चारदीवारी में बन्द होकर पुस्तकों में सर घुसाए थे और वह बाहर उन्मुक्त घूम रहा था। और फिर बड़े भाई साहब का उपदेश शुरू होता–

1. प्रेमचंद से दोस्ती : सम्पादक विकास नारायण राव : कहानी : बड़े भाई साहब, पृ. 108

2. वही पृ. 108.

3. वही पृ. 109.

इस तरह अँग्रेज़ी पढ़ोगे तो ज़िन्दगी भर पढ़ते रहोगे और हर्फ़ न आएगा। अँग्रेज़ी पढ़ना कोई हँसी-खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ ले, नहीं ऐरा गैरा नत्थू खैरा सभी अँग्रेज़ी के विद्वान हो जाते। यहाँ रात-दिन आँखें फोड़नी पड़ती हैं और ख़ून जलाना पड़ता है, तब कहीं यह विधा आती है। और आती क्या है! हाँ, कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान भी शुद्ध अँग्रेज़ी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूँ तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नहीं लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूँ, तुम अपनी आँखों से देखते हो।... रोज़ ही क्रिकेट और हॉकी मैच होते हैं। मैं पास नहीं फटकता। हमेशा पढ़ता रहता हूँ उसपर भी एक-एक दरजे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूँ, फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेलकूद में वक़्त गँवाकर पास हो जाओगे?'[4]

डाँट खाकर छोटा भाई कमर कसता, टाइम टेबल बनाता जिसमें निरन्तर अध्ययन का ही प्रावधान होता, किन्तु खेल का मैदान छोटे भाई को खींच ले जाता। 'मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हलके-हलके झोंके, फ़ुटबाल की उछल-कूद, कबड्डी के वह दाँव-घात, वॉलीबॉल की वह तेज़ी और फुरती, मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहाँ जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जान लेवा टाइमटेबल, वह आँख-फोड़ पुस्तकें, किसी की याद न रहती, और फिर भाई साहब को नसीहत और फ़ज़ीहत का अवसर मिल जाता।' किन्तु होता यह है कि छोटा भाई खेलते-कूदते भी पास हो जाता है और केवल पास ही नहीं होता, बल्कि अपने दरजे में अव्वल भी आ जाता है। जबकि बड़ा भाई फ़ेल हो जाता है और उनके और छोटे भाई के बीच केवल दो साल का अन्तर रह जाता है। छोटा भाई चाहता है कि बड़े भाई को खरी खोटी सुनाए, पर उनका दुख और उदासी देखकर उसे उनसे दिली हमदर्दी होती है और उनके घाव पर नमक छिड़कने का ख़्याल ही बहुत लज्जास्पद जान पड़ता है। किन्तु अब वह साफ़तौर पर भाई साहब की अवहेलना करने लगा और अपना भरपूर समय खेलकूद में बिताने लगा। लेकिन एक दिन जब छोटा भाई सुबह का सारा समय गुल्ली डण्डे की भेंट करके दोपहर में ठीक भोजन के समय लौटता है तो बड़े भाई साहब तलवार खींच लेते हैं–

'देखता हूँ, इस साल पास हो गए और दरजे में अव्वल आ गए तो तुम्हें दिमाग़ हो गया है; मगर भाई जान घमण्ड तो बड़ों-बड़ों का नहीं रहा तुम्हारी क्या हस्ती है?... महज़ इम्तहान पास कर लेना कोई चीज़ नहीं, असल चीज़ है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो उसका अभिप्राय समझो।'

और बड़े भाई साहब रावण से लेकर शैतान और शाहेरुम तक के उदाहरण छोटे भाई को देते हैं जो घमण्ड करने का अपराध कर सज़ा पा चुके हैं। इससे आगे का भाई साहब का उपदेश शिक्षा व्यवस्था पर अच्छा ख़ासा शोध है। भाई साहब कहते हैं–

'मेरे दरजे में आओगे, तो दाँतों पसीना आ जाएगा, जब अलज़बरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा। बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ-आठ हेनरी ही गुज़रे हैं। कौन-सा काण्ड किस हेनरी के समय में हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवाँ लिखा और सब नम्बर ग़ायब! सफ़ाचट। सिफ़र भी न मिलेगा, सिफ़र भी! हो किस ख़्याल में! दर्जनों तो जेम्स हुए हैं, दर्जनों विलियम्स, कौड़ियों चार्ल्स! दिमाग़ चक्कर खाने लगता है। आँधिया रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे। एक ही नाम के पीछे

4. वही पृ. 110.

5. वही पृ. 111.

दोयम, तेयम, चहारम, पंजुम लगाते चले गए। मुझसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता और जामेट्री तो ख़ुदा की पनाह! अ ब ज की जगह अ ज ब लिख दिया और सारे नम्बर कट गए। कोई इन निर्दयी मुमतहिनों से नहीं पूछता कि आख़िर अ ब ज और अ ज ब में क्या फ़र्क़ है, और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का ख़ून करते हो? दाल भात रोटी खाई या भात दाल रोटी खाई, इसमें क्या रखा है; मगर इन परीक्षकों को क्या परवाह। वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तकों में लिखा है। चाहते हैं कि लड़के अक्षर-अक्षर रट डालें। इसी रटन्त विद्या का नाम शिक्षा रख छोड़ा है।'[5]

प्रेमचंद ने अपने विषय में कहा है— 'गणित मेरे लिए गौरीशंकर की चोटी था जिसपर कभी न चढ़ सका'। प्रेमचंद के विषय में यह तथ्य सर्वविदित है कि वह मैट्रिक में तीन बार फ़ेल हुए और तभी मैट्रिक पास कर पाए जब गणित विषय की अनिवार्यता मैट्रिक के लिए समाप्त हो गई। यहाँ प्रेमचंद 'बड़े भाई साहब' के माध्यम से न जाने कितने ही विद्यार्थियों की व्यथा साझा करते हैं। *बड़े भाई साहब कहते हैं—*

'और आख़िर इन बे-सर-पैर की बातों को पढ़ने से फ़ायदा? इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दोगुना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन? दोगुना नहीं, चौगुना हो जाए, या आधा ही रहे, मेरी बला से; लेकिन परीक्षा में पास होना है तो यह सब ख़ुराफ़ात याद करनी पड़ेगी। और विषयानुकूल लेखन का तो यह हाल है कि कह दिया— 'समय की पाबन्दी पर एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो।'... 'जो बात एक वाक्य में कही जा सके उसे चार पन्नों में कहने की क्या ज़रूरत? मैं तो इसे हिमाकत समझता हूँ। यह तो समय की किफ़ायत नहीं बल्कि उसका दुरुपयोग है। व्यर्थ में किसी बात को ठूँस दिया जाए।'... 'अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है, संक्षेप में लिखो। समय की पाबन्दी पर संक्षेप में एक निबन्ध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। ठीक! संक्षेप में तो चार पन्ने हुए, नहीं शायद सौ-दो सौ पन्ने लिखवाते। तेज़ भी दौड़िये और धीरे-धीरे भी। उल्टी बात है या नहीं? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज़ भी नहीं। उसपर दावा है कि हम अध्यापक हैं।'

छोटे भाई की प्रतिक्रिया यह है—

'भाई साहब ने अपने दरजे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खींचा था उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा, यही ताज्जुब है'[6]।

दरअसल यह वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर व्यंग्य है। यह वही व्यवस्था है जो विद्यार्थियों को भयभीत करती है, किताबों से अरुचि पैदा करती है। कहानी की त्रासदी और आगे बढ़ती है। अगले साल भी वही होता है जो पिछले साल हुआ था। छोटा भाई लगभग न के बराबर पढ़कर भी न केवल पास होता है बल्कि दरजे में अव्वल भी आ जाता है। और बड़े भाई साहब दिन-रात आँखें फोड़कर भी फ़ेल हो जाते हैं। और दोनों भाइयों के बीच पाँच वर्ष का उम्र का फ़ासला होने पर भी दर्जों में केवल एक साल अन्तर रह जाता है जबकि

भाई साहब ने प्राणान्तक परिश्रम किया था। पुस्तक का एक-एक शब्द चाट गए थे, दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उधर, छह से साढ़े नौ बजे तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा कान्तिहीन हो गई थी, मगर बेचारे फ़ेल हो गए"।7

नतीजा सुनाया जाता है तो बड़े भाई रो पड़ते हैं और साथ ही छोटा भाई भी। उसके अपने अव्वल आने की ख़ुशी ख़त्म हो जाती

6. वही पृ. 112.

7. वही पृ. 113.

है। अब भाई साहब कुछ नर्म पड़ जाते हैं और छोटे भाई को कुछ ऐसी धारणा हो जाती है कि वह तो पास हो ही जाएगा चाहे पढ़े या न पढ़े। उसकी तक़दीर बलवान है। उसे पतंग उड़ाने का नया शौक़ पैदा होता है और वह सारा समय पतंगबाज़ी की ही भेंट कर देता है। हालाँकि वह कहता है–

‘फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था। और उनकी नज़र बचाकर ही कनकौए उड़ाता था। माँझा देना, कन्ने बांधना, टूर्नामेण्ट की तैयारियाँ आदि समस्याएँ अब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। मैं भाई साहब को यह सन्देह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज़ मेरी नज़रों में कम हो गया है’।

एक दिन छोटा भाई लग्गे लिए पतंग लूटने के लिए दौड़ा जा रहा था, तभी भाई साहब से उसकी मुठभेड़ हो जाती है। वह छोटे भाई का हाथ पकड़ लेते हैं और उग्र भाव से उसे कहते हैं–

इन बाज़ारी लौंडो के साथ धेले के कनकौए के लिए दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज़ नहीं है कि तुम अब नीची जमाअत में नहीं हो, बल्कि आठवीं जमाअत में आ गए हो और मुझसे एक दरजा नीचे हो। आख़िर आदमी को कुछ तो अपनी पोज़ीशन का ख़याल करना चाहिए। एक ज़माना था जब लोग आठवाँ दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे’।

और भाई साहब न जाने कितने ही मिडलचियों का उदाहरण देते हैं जो आठवाँ दरजा पास करके डिप्टी मजिस्ट्रेट, सुपरिंटेंडेंट या लीडर और समाचार-पत्रों के सम्पादक हैं। वह छोटे भाई को कहते हैं कि उसी दरजे में आकर वह बाज़ारी लौंडो के साथ कनकौवों के लिए दौड़ रहा है। अब भाई साहब इस तरह से तर्क देते हैं कि

‘वह ज़ेहन किस काम का जो आत्मगौरव की हत्या कर डाले। तुम अपने दिल में समझते होगे, मैं भाई साहब से महज़ एक दरजा नीचे हूँ और अब उनको कुछ कहने का हक़ नहीं; लेकिन यह तुम्हारी गल्ती है। मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और चाहे तुम आज मेरी ही जमाअत में आ जाओ। और परीक्षकों का यह हाल है तो निस्सन्देह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे। और शायद एक साल बाद मुझसे भी एक साल आगे निकल जाओ। लेकिन मैं तुमसे पाँच साल बड़ा हूँ और हमेशा रहूँगा। मुझे दुनिया का और ज़िन्दगी का जितना तजुर्बा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते। तुम चाहे एमए, डीलिट् या डीफिल ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती, यह दुनिया देखने से आती है। हमारी अम्मा ने कोई दरजा पास नहीं किया और दादा भी शायद पाँचवी-छठी जमात से आगे नहीं गए; लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़ लें, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा’।

बड़े भाई साहब कम पढ़े लिखों के तजुर्बों, दुनियादारी और उम्र के बड़े होने पर छोटे से ज़्यादा समझदार और दुनियादार होने के इतने उदाहरण देते हैं कि छोटा भाई उनके आगे नतमस्तक हो जाता है। भाई साहब छोटे भाई को गले लगाकर कहते हैं कि

मेरा जी भी ललचाता है; लेकिन क्या करूँ, ख़ुद बेराह चलूँ तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूँगा। यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर पर है।

कहानी का अन्त किशोर मनोविज्ञान का पूरा चिट्ठा खोल देता है।

‘संयोग से उसी वक़्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुज़रा। उसकी डोर लटक रही थी। लडकों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लम्बे हैं ही। उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा हॉस्टल की तरफ़ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था’।

बड़े भाई के आगे-आगे दौड़ने और छोटे भाई के पीछे-पीछे दौड़ने में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का पूरा-पूरा बिम्ब उभर आता है जहाँ 'येन पंथा गता' या गतानुगतिकता को ही आदर्श माना गया है। शायद भारतीय मानस और सनातनी सोच ही इसके लिए उत्तरदायी थी जहाँ नवीनता का निषेध है। एक अलग सन्दर्भ में यह कहानी शिक्षा और उस पूरे परिवेश पर व्यंग्य है जहाँ शिक्षा इस तरह की परीक्षा पर आधारित है जो रटने पर बल देती है। यदि कोई बिना समझे भी रट कर प्रश्न का उत्तर दे दे तो वह अव्वल, नहीं तो फ़ेल। इस किताबी शिक्षा का ही परिणाम है कि आज बेरोज़गारों की एक लम्बी-चौड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई है और शिक्षा अपने मूल लक्ष्य यानी व्यक्ति के नागरिक और निजी जीवन को समृद्ध बनाने से भटक गई है।

वर्तमान समय में नई शिक्षा नीति पर बहस चल रही है। प्रमुख चिन्ता यह है कि शिक्षा किस प्रकार सर्वांगीण विकास का साधन बने। इसके अन्तर्गत यह कोशिश की जा रही है कि शिक्षा वैश्विक दृष्टि के साथ इतिहास बोध और सांस्कृतिक अस्मिता से जुड़ी हो। समस्या यह है कि शिक्षा का कौन-सा स्वरूप हो जो इक्कीसवीं सदी की ज़रूरतों के साथ परम्पराओं, इतिहास, संस्कृतियों और मूल्यों– सभी को साथ लेकर इन दोनों आयामों को सन्तुलित करे।

आख़िरी शिक्षा नीति साल 1986 में आई थी और तब से लेकर अब तक भारत ही नहीं, पूरा विश्व बदल चुका है। पर्यावरण का संकट, क्षेत्रीय विषमताएँ और बेरोज़गारी दिन-ब-दिन बढ़ रहे हैं। शिक्षा का व्यावसायीकरण और निजी क्षेत्र का प्रसार तेज़ी से हुआ है, जबकि शिक्षा की व्यवस्था, गुण और उपलब्धता का दायित्व राज्य पर रहा है। डिजिटल क्रान्ति हुई ज़रूर है, पर आज भी दूरदराज़ के कस्बों की तो बात ही छोड़िए, दिल्ली के आसपास के इलाक़ों से आने वाली कितनी ही छात्राएँ बताती हैं कि ऑनलाइन फ़ॉर्म के कारण वे कितनी परेशान हुईं और उनके कस्बे में साइबर कैफ़े न होने के कारण उन्हें कट-ऑफ़ देखने में कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ा। इन सब स्थितियों के चलते शिक्षा के स्थायी संकट यानी परीक्षा केन्द्रित रटन्त विद्या के अलावा भी अन्य कई बुनियादी प्रश्न हैं जो हमारे सामने मुँह बाए खड़े हैं जैसे– बाज़ारवाद के दौर में दक्षता का सांस्कृतिक मूल्य क्या होगा? भारतीयता को अपनाकर ग्रहण की जाने वाली शिक्षा भूमण्डलीकरण के दौर में वैश्विक बाज़ार एवं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक-राजनीतिक स्थितियों के सामने टिक पाएगी। शिक्षा नीति तभी कारगर होगी जब भावी पीढ़ी अपने समाज के विकास के लिए कोई नया रास्ता निकाल पाए।

डॉ निशा नाग हिन्दी में एमफिल, पीएचडी हैं। आपकी विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में समीक्षाएँ, लेख व कहानियाँ प्रकाशित होती रहती है। मिरांडा हाउस, दिल्ली विश्वविद्यालय में वरिष्ठ प्रवक्ता हैं जहाँ वे पिछले 23 वर्षो से अध्यापन कर रही हैं।
सम्पर्क : nishanagpurohit@gmail.com